ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 43-47

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

संत साहित्य परंपरा में कबीर दास जी का योगदान

प्रदीप कुमार प्रजापति

शोध अध्येता– मड़ियाहूं पी0जी0 कॉलेज मड़ियाहूं–जौनपुर (उ0प्र0) भारत

Received-06.07.2022, Revised-11.07.2022, Accepted-14.07.2022 E-mail:pradeepkumarprajapatu548@gmail.com

सारांशः – ***महापुरुष त्रिकालदर्शी होते हैं। उन्हें किसी एक कालखण्ड में सीमित नहीं किया जा सकता है। इतिहास के लिए जिस बिन्दु पर हुए वे खड़े होते हैं। अतीत का सम्पूर्ण बोध, वर्तमान का यथार्थ और आगे आने वाले मृग की दृष्टि उनके चिन्तन लोक में सजीव रहती है। ऐसी स्थिति में इतिहास का अतीत और वर्तमान से गुजरता हुआ, उनका भविष्य अविछिन्न रूप से प्रत्येक चिंतन को प्रभावित करता है, जिसे वे आने वाली पीढ़ी को एक अमूल्य अवदान के रुप में दे जाते हैं। इस कोटी में आने वाले महापुरुषों को भली–भाँति समझने के लिए युगों की आवश्यकता होती है। मृग–सत्य का साक्षात्कार करने की उनकी जो अपार क्षमता है, उसकी उपलब्धियां आने वाली पीढ़ियाँ अपनी क्षमता के आधार पर युगीन सामाजिक सन्दर्भों में उनके संदेश को ग्रहण करती है। महापुरुषों की यही है और यही उनकी प्रासंगिकता भी है। समाज का इतना बड़ा मानचित्र महापुरुष के चिन्तन के समक्ष होता है उतना ही बड़ा होता है और उसका प्रभामण्डल भी उसी के अनुसार आकार ग्रहण करता है।***

कुंजीभूत शब्द– त्रिकालदर्शी, कालखण्ड, सम्पूर्ण, चिन्तन लोक, अमूल्य अवदान, मृग–सत्य, प्रभावमंण्डल, छत्रछाया।

अपने देशों में और सारी दुनिया में तमाम तरह की संकीर्णताएं फैलती जा रही हैं। धर्म, जाति तथा वंशक्रम से सम्बन्धित सभ्यता की छत्रछाया में पलने वाली परोपजीवी तत्वों से लड़ने के लिए कबीर के लिए कबीर के सबद–साखियां औषधि भी हैं और शस्त्र भी। कबीर पर सोचना आज की सामाजिक चिन्ताओं के निराकरण के लिए अनिवार्य है। किसी भी प्राचीन संस्कृति में कुछ नया जोड़ने या पुराने को बदलने की आवश्यकता का अनुभव साधारण स्थितियों में नहीं होता है। परिवर्धन या परिवर्तन तभी अनिवार्य हो उठता है, जब आन्तरिक गुणात्मक विकास के कारण या बाहरी आघात अथवा दबाव के फलस्वरूप परिस्थितियाँ इतनी बदल जाती हैं कि पुरानी दृष्टि और व्यवस्था उनकी नई चुनौतियों को नए उत्तर नहीं दे पाती, वे मर जाती हैं, अर्थात दूसरों के रंग में वे इतना अधिक रंग जाती हैं कि अपना पूर्व–परिचय परिचय खो बैठती हैं और आक्रान्ता संस्कृतियों की पिछलग्गू बन जाती हैं। तेजस्विता जीवित रहने के लिए अपरिहार्य रूप से अपने अतीत से अपने को सम्बन्ध रखते हुए (अर्थात अपने मौलिक स्वरूप की रक्षा करते हुए) नहीं परिस्थितियों को अपने अनुरूप या अपने को नहीं परिस्थितियों के अनुरूप बनाना पड़ता है। समुचि जाति जब सचेत या अचेत रूप से ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता का उत्कृष्ट अनुभव करने लगती है और उनकी संस्कृति इतनी समृद्ध होती है कि वह नई समस्याओं के नए समाधान दे सके, तब उनकी जिजीविषा ऐसे युगपुरुषों को जन्म देती है, जो इन परिवर्तनों के वाहक बन सके। हमारी गौरवशालिनी भारतीय संस्कृति ने अपने हजारों वर्षों के दीर्घ जीवन काल में उत्थान–पतन के चक्र को घूमते कई बार देखा है और हर संकट के समय ऐसे महापुरुषों को जन्म दिया है, जो प्राचीन के जड़ के अंश को काटकर उसके चित्र अंश को आलोक में नवीन का सर्जन कर उसे समृद्ध और शक्तिशाली बनाते रहे हैं। कबीर और असंदिग्ध रूप से ऐसे ही महापुरुष थे।

ईशा की 15वीं सदी तक देश के भीतर की केंद्रीय राजनीतिक सत्ता पर तुर्को–अफ़गानों का अधिकार हो चुका था। वे अपने साथ इस देश में एक नया बलिष्ठ धर्म एवं नई आक्रामक संस्कृति लेकर आए थे। जातियों और सम्प्रदायों में बाटाँ भारत ह्रदयविहींन सामाजिक कड़ियों और प्राणहीन धार्मिक ब्रह्मयाचारों के शिकंजे में जकड़ा भारत न उनका प्रत्याख्यान कर सकता था, न उसका आत्मगौरव अपनी संस्कृतिक महिमा को तिलांजलि देकर उन्हें पूर्णतः ग्रहण ही कर सकता था। भारतीय समाज एवं ब्रह्माचार्य प्रधान धर्म की विसंगतियां इतनी प्रत्यक्ष हो चुकी है कि उनके परिमार्जन की प्रचेष्टाएँ स्वतः आरम्भ हो गई थी, इस्लाम के आगमन ने उन्हें और व्यापक बनाया और द्रुतगति से सम्पन्न किया। हमारा एकमात्र संकेत मध्यकालीन भक्ति धारा की ओर है, जिसे अपनी अमृतमई तरंगों से समग्र भारत को प्लावित कर उसकी संस्कृतिक ग्लानि को धो दिया। हम उन लोगों से सहमत नहीं हैं, जो मध्यकालीन भक्ति–साधना और साहित्य को इस्लामी आक्रामण की प्रतिक्रिया मानते हैं, दक्षिण के जो अलवर भक्त और वैष्णो आचार्य भक्ति के भावात्मक एवं शास्त्री स्वरूप के प्रमुख निर्धारक थे, वे निश्चय ही इस्लामी प्रतिक्रिया और प्रभाव दोनों से मुक्त थे, किन्तु हम यह मानते हैं कि इस्लामी आक्रामक के फलस्वरूप ऊंच–नीच और भावना पर आधारित वर्ग–धर्म का ढाँचा चरमरा गया तथा कथित नीची जातियों ने सामाजिक विषमता का प्रतिवाद करना आरम्भ किया। ज्ञान और योग आहत जनमानस को अश्वस्त करने में असमर्थ सिद्ध होने लगे, कर्मकाण्ड मुल्क धर्म–साधना कठिनतर हो गई, इससे उत्पन्न रिक्तता की सहजपूर्ति पर आधृत भक्ति–साधना करने में सफल हुई। जिसके लिए जाती–पाती, क्रिया–कर्म, योग–ज्ञान,

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

आदि की आवश्यकता नहीं थी, जो ना इतनी स्पर्शकातर थी कि विदेशिया विधर्मियों के सम्पर्क से अपवित्र हो जाती, न इतनी कठोर के अज्ञान या प्रलोभन के कारण हुए पतन, स्खलन को क्षमा न कर पाती। इस भक्ति गंगा भारत को उत्तर भारत के जनमानस में प्रवाहित करने वाले हरि की पैड़ी बना तो एक मात्र कबीरदास बने जिनमें सभी जनमानस को अवगाहन करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह किसी प्रचलित वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए और उनका प्रचार करने लगे। कबीर की प्रतिभा सर्जनामूलक थी, अनुकरणमुलक नहीं। अपने समय में प्रचलित विविध साधना मार्गों के निकट संपर्क में भी आए थे। विद्वानों के अनुसार वे मूलतः "योगी" या "युगी" जाति के थे। उनके परिवार ने उनसे सम्भवत एक या दो पीढ़ी पहले इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। अतः उन्हें विरासत में ही नाथपंची साधना तथा इस्लामी संस्कार प्राप्त हुए थे। अपने चारों ओर फैले समाज में प्रचलित परम्परागत हिंदू रीति–नीति के उनका प्रत्यक्ष परिचय था। वे सूफियों की "मदहति" भी सुनते थे और वैष्णव तो उनके "संगी" ही थे। वे पुस्तकी ज्ञान से भले वंचित रहे हो, किन्तु गुरु कृपा से वास्तविक धर्मों के मर्म से अवगत हो चुके थे। जैसा कि कबीर ग्रंथावली में स्पष्ट है :

"सतगुरु तत कह्यो विचार, मूलगह्यों अनमैं विस्तार"
तथा कहत सुनत पुनि आपनों आपन पै आपा बुखया।[1]

उक्त वचनों के अनुसार सद्गुरु से प्राप्त तत्व का उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर विस्तार किया था। यह "स्वानुभूति" ही कबीर की कसौटी है। वे उसी को "साक्षी" नाम देते हैं, जिसे अपने अनुभव से "स्वसंवेद्यज्ञान" से वे जान चुके थे। वेद हो या कुरान या कोई अन्य मान्य ग्रंथ यदि उनकी कोई आज्ञा उनकी अपनी अनुभूति के प्रतिकूल जाती है, तो उसे अमान्य कर देन में रंगमात्र भी कुंठा का बोथ नहीं करते हैं। कबीर की भूमिका कृषि की है, जो प्रयोजन पड़ने पर प्राचीन को अस्वीकार कर नवीन विधान देने की क्षमता रखता है, पुरोहित कि नहीं, जो प्रायः अपरिवर्तनवादी एवं प्राचीन विधाओं का अन्धानुगामी होता है। कृषि परम तत्व का स्वयं साक्षात्कार करता है, एवं अन्य को प्रेरणा देता है, जबकि पुरोहित सामान्य जन और देवी–देवताओं के बीच मध्यस्थ बना रहना चाहता है और इसी मध्यस्थता द्वारा जीविकोपार्जन करता है। पुरोहित का सा कोई निहित स्वार्थ ना होने के कारण कृषि अर्थहीन ब्रह्मचार्यों के प्रति विद्रोह कर योगानुरूप विचार एवं आचार का प्रवर्तन करता है।

वह नवीन विचार सर्वथा नहीं होते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। विशेषतः प्राचीन संस्कृतियों के सम्बन्ध में तो यह देखा गया है कि उनके अंतर्गत विकसित होने वाले परिवर्ती चिन्तक स्वानुभूति के आधार पर ही सही, चाहे कितना ही मौलिक चिंतन क्यों ना करें, उनके अधिकांश तत्व किसी ना किसी पुरानी विचारधारा या परंपरा से किसी ना किसी प्रकार सम्बद्ध दिखाए जा सकते हैं, किन्तु इससे न तो वे पुराने माने जा सकते हैं, न यही स्वीकार किया जा सकता है कि उनका इस संस्कृति के विकास में कोई नया योगदान नहीं है। वस्तुतः अपनी संस्कृति के अंतर्गत चली आने वाली अनेकानेक परम्पराओं में से (जिसमें कुछ परस्पर विरोधी भी हो सकती है) किसी एक को या अनेक के समन्वित रूप को परिष्कृत कर इस प्रकार रखना कि किंकर्तव्यविमूढ़ सामान्य–जन उसका अनुगमन कर अपने जीवन को उच्चतर बना सके निश्चय ही संस्कृति में नया योगदान करना है। इसी तरह पुरानी संस्कृतियाँ अपने स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए नहीं चलती चली जा रही है। अपने समय में ऐसा करने के कारण ही कबीर को भारतीय संस्कृति का विशिष्ट उन्नायक माना गया है। इस सन्दर्भ में कबीर का यह मार्मिक दोहा विचारणीय है :

कबीर सोई आखिर सोई बयन, जन जूजुना चबंत।
कोई एक मैले के लवणि, अमी रसाइण हंत।।[2]

अर्थात अक्षर और वचन तो वे ही रहते हैं, किंतु लोग उसको भिन्न–भिन्न ढंग से कहते हैं। जब कोई एक उनमें "लवण" मिला देता है, तब उसका अमृत रसायन हो जाता है। कबीर ने भी पुरानी मान्यताओं में ऐसे ही "लवण" का योग कर उठे अमृत रसायन बनाया था।

अपनी सुदीर्घ परम्परा से प्राप्त वशीभूत तत्व को ग्रहण कर कबीर ने साहस– पूर्वक जीवन के नाना क्षेत्रों में उनका प्रयोग किया, वह था "आध्यात्मिक एकत्व" अथवा "अद्वैतवाद"। इन्होंने अनुभव किया था कि :

व्यापक ब्रह्म सबनि में एकै, को पंडित को जोगी।
राजा रंक कवन तू कहिये, कवन वैद को रोगी।।
इनमें आप, आप सबहिन में, आप आप सू खेलै।
नाना भाँति गणे सब भांड़े, रूप धरे हरि मैले।।[3]

एक ही ब्रह्मा पण्डित, योगी राजा, रंक वैद रोगी सब में व्याप्त है, बल्कि वह आप ही इन विविध रूपों में व्यक्त होकर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

लीला कर रहा है। इस सत्य तक के तर्क के द्वारा या शास्त्र विवेचन द्वारा नहीं पहुंचे थे, न ही उन्होंने उनका दार्शनिक पद्धति से निरूपण ही किया था। उनका सहज साधनालब्ध सत्य है और इसकी अभिव्यक्ति थी कि उन्होंने विश्वास की सरल, किन्तु जीत लेने वाली भाषा में की है। उदाहरण –

एक राम देखा सब हिन मैं, कहै कबीर मन माना।[4]
प्यारे राम मन ही मना, कासु कर कहूं, कहना कौ नाही दूसरे और जना।[5]
हम तो एक एक करि जानां,
दोइ कहै तिनही कौ दोजग जिन नाहिन पहचाना।।[6]
एको देवः सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।[7]

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इसमें तथा "सर्व खल्विदं ब्रह्मा" के औप निषदिक अद्वैतवाद एवं सर्वात्मवाद की अनुगूँज है, इस्लामी एकेश्वरवाद की नहीं, जिसके अनुसार परमात्मा एक होकर भी सृष्टि से भिन्न है और बंदा खुदा से कभी अद्वैतता का दावा नहीं कर सकता।

इस आध्यात्मिक एकत्व को वे विचार तक ही सीमित नहीं रखते, विवेक पूर्वक धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में व्यवहार के धरातल पर भी उतारते हैं। यदि परमात्मा एक है, तो वह समस्त संस्थाबद्ध धर्मों के आचार्यों द्वारा भिन्न–भिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी एक ही है। इसी स्तर पर भी राम–रहीम, केशव–करीम, ब्रह्मा–अल्लाह, को एक ही घोषित करते हैं। जैसे :

हमारे राम रहीम करीमां केसौ, अलह राम सति सोई।
बिसिमल मेरी विसंभर एकै और न दूजा कोई।।[8]

उनके लिए मंदिर मस्जिद काशी, काबा एक ही है। उक्ति उद्धरण –"काबा फिर काशी भैया, राम भैया रहीम।" कहने में उन्हें कोई अनौचित्य नहीं दिखता, अतएव जब इनका नाम लेकर हिंदू और मुसलमान या धर्मावलंबी एक दूसरे से झगड़ते हैं और अपने को औरों से भी भिन्न मानते हैं तब कबीर इन भ्रमजन्य भेदी लोगों पर विश्वास करने के कारण उन्हें भोंदू कहते हैं और उन्हें चिताते हैं कि बोलने वाला जीवात्मा तो एक ही है, वह ना हिंदू है, न हीं तुर्क, फिर यह संघर्ष क्यों ? उनकी भ्रम भंजक वाली है :

अरे भाई दोइ कहा सो मोहि बतावो।
विधि ही भरम का भेद लगावो।
जोनि उपाय रचौ द्वै धरनी, दिन एक बीच भद्द करती।।
राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला, उनि तसबी लई।
कहै कबीर चेतहु रे भोंदू बोलनहारा तुरक न हिन्दू ।।[9]

फिर भी जब संकीर्ण ह्रदय वाले हटाग्राही धर्माचार्य प्रभु के जीवो में मेल की जगह बैर के बीज बोते हैं, स्थूल ब्रह्माचार्यों को ही प्रधानता देकर अन्तर्निहित एकता की उपेक्षा करते हैं, तब कबीर विक्षब्ध स्वर में कह उठते हैं:–

"बजरी परी इहि मथुरा नगरी, कान्ह पियासा जाई रे।"

तथाकथित धर्मों की इस मथुरा नगरी पर वज्रपात हो गया है, लोग ब्रह्मा को लेकर ही इतना झगड़ा कर रहे हैं कि अन्तरम "कान्हा" गया है, प्यासा ही चला जा रहा है और उस तरफ किसी का ध्यान नहीं है। इस झूठे झगड़े से विरक्त होकर वे कहते हैं :

हमारा झगड़ा रहा न कोई, पंडित मुल्ला छाड़ै दोउ।।
पंडित मुल्ला जो लिख दीया। छाड़ि चले हम कछु न लिया।।[10]
धर्मांध लोग माने या न माने, उनकी निश्चित सामाजिक धारणा और निर्भीक घोषणा है–
"हिन्दू मुरक की साहब एक। कर करै मुल्ला, कह करें शेख।।"

अपने को "ना हिंदू ना मुसलमान" कहने में उनका अभिप्राय यही है कि मनुष्यों को विभक्त करने वाले किसी भी संस्थाबद्ध धर्म वे अपने आप को मुक्त नहीं कर सकते।

सामाजिक स्तर पर ऊंच–नीच और छुआछूत का विरोध भी इसी आधार पर करते हैं कि एक ही ज्योति से उत्पन्न, एक ही से शरीर वाले मनुष्यों में किसी को जन्म के कारण ही ब्राह्मण मानकर बहुत ऊंचा और पवित्र और किसी को शुद्र मानकर नीचा और अछूत कैसे माना जा सकता है – इस विषय में उनका विचार दृष्टव्य है :

एक बूँद, एकै मल मूतर, एक चाम, एक गूदा,।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

एक जोति थे सब उतपना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।[11]

स्वयं तथाकथित नीची जाति होने के कारण ही इस भेदभाव की अमानुशिकता का कटु अनुभव कबीरदास को था। स्वभावतः इस प्रश्न पर उनकी वाणी उग्र है। चुनौती भरे स्वर में उन्होंने पंडित से पूछा है :

तुम कत ब्राह्मण हम कत शुद्र।
हम कत लोहू, तुम कत दूध।।[12]

इसी तरह भगवान (भगवान) बुद्ध और महावीर की वाणी ही उनके कंठ से ध्वनित हुई थी, जब उन्होंने जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर ब्राह्मणत्व और उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करने की बात कही थी।

कहू कबीर जो ब्रह्मा विचारे।
सो ब्राह्मण कहियत है हमारे।।

इसी तरह वे मुल्ला और काजी को भी उनके पदों द्वारा नहीं आचरणगत गुणों द्वारा ही श्रेष्ठ मान सकते है। उनका कहना था :

सो मुल्ला जो मन स्यों लरै। गुरु उपदेश काल स्यों जुरै।
काल पुरुष का भरदै मान। तिस मुल्ला को सदा सलाम।।.....
काजी सो जो काया विचारे। काया की अग्नि ब्रह्मा परजारै।
सुपने बिन्दु न देई झरना, तिसु काजी कौ जरा सा न मरना।।[13]

तात्विक दृष्टि से जब मनुष्यों का एक मारने पर भी व्यवहारिक दृष्टि से अच्छे–बुरे संग्रहणीय – व्याज्य का विचार जन्म और पद के आधार पर तो नहीं किन्तु आचरण के आधार पर वे अवश्य करते थे। उनकी मान्यता थी कि " कहे– कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि राम ना होई,। हरि के विमुख, किन्तु बातों से आसमान गिराने वाले लोगों से सदा दूर रहने और डरते रहने का उपदेश उन्होंने दिया था :

हरि जसि सुनहि, हरि मुनि गावहिं।
बातन के आसमान गिरावहीं। ऐसे लोगन स्यो क्या कहिए।
जो प्रभु की भगति से बाहर, तिनके सदा डराने रहिये।।[14]

जो अपने पास चुल्लू भर पानी होने पर भी गंगा को लाने वाले की निंदा करते हैं, जो उड़ते–बैठते कुटिलता ही बरतते हैं, स्वयं बिगड़कर औरों को बिगाड़ते हैं, स्वयं काने होकर आँख वाले पर हंसाते हैं, मैं किसी धर्म या जाति के क्यों न हो, ऐसे कटु वचन करते हुए वे कहते हैं :

तिनका देखी कबीर लजाने।

जन्म और पद की ही तरह केवल धन से कोई बड़ा हो जाता है, यह भी कबीर को अमान्य था, किन्तु जड़ समाज के लिए आज की ही उस तरह समय भी धन की महिमा अपार थी। उन्होंने बड़े दुख के साथ अनुभव किया था–
कबीर इस कृत्रिम वैषम्य को भी स्वीकार नहीं करते। उनकी असहमति का आधार मूलभूत अध्यात्मिक एकत्व का उनका विश्वास ही है इसी पर में आगे उन्होंने कहा है :

निर्धन सरधन दोनों भाई।
प्रभु कि कला न मेटी जाई। कहि कबीर निर्धन है सोई।
जाके ह्रदय नाम न होई।।

इस प्रकार आज के कुछ विचारकों की दृष्टि में कबीर की महत्ता मुख्यतः इसी में है कि उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के वैमनस्य जॉति–पाती के वैषम्य तथा छुआछूत को दूर करने का भागीरथ प्रयास किया था। सचमुच यह बड़ा काम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा काषी पद, 386.
2. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा काषी साखी, 33/7.
3. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा काषी पद, 186.
4. वही, पद, 52.
5. वही, पद, 54.
6. वही, पद, 55.
7. श्वेताश्वेतर उपनिषद, 1/11 (कबीर सम्पादक वासुदेव सिंह) पृष्ठ–56.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

8. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा काषी, 58.
9. वही, पद, 31/10.
10. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा पद 27.
11. वही, पद राग गौड़ी, पद 57.
12. वही, पद, 61.
13. वही, पद, 213.
14. वही, पद, 41.
15. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा काषी, पद 130.

*****